तृतीय अध्याय

"नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन : आर्थिक संदर्भ"

तृतीय अध्याय

"नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन - आर्थिक संदर्भ"

3.1 प्रस्तावना।

3.2 ग्राम जीवन और आर्थिक दशा।

3.3 नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक स्थिति -

3.3.1 कृषि व्यवस्था।

3.3.2 जमींदारों की नीति।

3.3.3 सरकारी योजनाएँ।

3.3.4 गरीबी एवं बेरोजगारी।

3.3.5 विभिन्न आर्थिक स्तरियता।

3.3.6 ग्रामीण लोगों के व्यवसाय।

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन - आर्थिक संदर्भ''

3.1 प्रस्तावना :-

आधुनिक काल में 'अर्थ' ही सबसे महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक वस्तु है। 'अर्थ' के अभाव से जीवन भी अर्थहीन है। अत: वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में 'अर्थ' ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। समाज की निरन्तर जीवन प्रक्रिया आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। जिस प्रकार शरीर को चलाने के लिए प्राणवायु की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मनुष्य के जीवन प्रक्रिया को चलाने के लिए अर्थ याने पैसा, धन की आवश्यकता होती है। आज समाज में जिस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी हो, उसे ही समाज में मान सन्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । मनुष्य के जीवन में अर्थ ही सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु होने के कारण उसकी प्राप्ति के लिए समाज में बेईमानी, भ्रष्टाचार, अवैध धंधे, अनीति, अत्याचार बढ़ गये है। परिणामत: समाजव्यवस्था का स्तर दिन-ब-दिन बिगडता जा रहा है। अपने देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। 70 प्रतिशत लोग खेती करते है, अत: वे ग्रामों में बसे हुए है। आज ग्रामों के लोगों की आर्थिक स्थिति सोचनीय है, उस ग्रामीण वर्ग के आय के स्त्रोत, आर्थिक स्थिति, रहन-सहन, खान-पान, मकान आदि को इस वर्ग के आर्थिक पक्ष में देखते हैं।

स्वातंत्र्यापूर्व काल में देश की आर्थिक स्थिति सुधारने की कोशिश अंग्रजों द्वारा कुछ मात्रा में की गयी, लेकिन उसमें उन्हें विशेष रूप से सफलता नहीं मिली। ग्रामों की आर्थिक स्थिति में विशेष सुधार नहीं आया। इसके अनेक कारण है जैसे की गरीबी, बेरोजगारी, सेठ-साहुकारों से सामान्य गरीब जनता का आर्थिक शोषण आदि। अंग्रेज सरकार किसानों से अनाज के उपर लगान भी वसूल करती थी। गरीब किसानों को दो वक्त की रोटी की चिंता लगी रहती थी उपर से यह लगान की समस्या। ज्यादा तर किसानों की खेती बारिश के उपर अवलंबित थी और एकाद साल बारिश कम हुअी तो फसल नहीं आती तथा ज्यादा बारिश हुई तो भी फसल का नुकसान होता था परंतु लगान तो देना ही पडता था। इस प्रकार अंग्रजों ने गरीब किसानों पर अत्याचार किये। परिणामत: किसानों की आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन बिघड़ती ही गयी।

15 अगस्त 1947 को देश को आजादी मिली। आजादी के बाद हमारी अपनी सरकार आयी। सरकार अच्छी तरह से जानती थी की भारत कृषिप्रधान देश है ज्यादातर लोग ग्रामों में ही

रहते है। उनकी जीविका खेती पर ही अवलंबित है। अत: देश को विकसित करने के लिए खेती में सुधार लाना चाहिए। इसी वास्तविकता को ध्यान में रखकर सरकार ने ग्रामों के विकास के लिए उनके विकास योजनाएँ शुरू की। इसके साथ-साथ लोगो के विकास के लिए, उनकी गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे-छोटे व्यवसाय, कुटीरोद्योग, शुरू किये। लेकिन सरकारी अधिकारियों और भ्रष्ट नेताओं की वजह से यह योजनाएँ ग्रामों तक नहीं पहुँची। समाज मे जिस गरीब, बेरोजगार, असहाय लोगों को जो विविध सहाय्यता दी जाती थी वह उन तक पहुँचती ही नहीं थी। स्वार्थी वृत्ति के कारण मानवीय मूल्य, आदर्श, नैतिकता आदि का अभाव रहा। समाज में ईर्ष्या, द्वेष, बेईमानी इतनी बढ़ गयी की लोग एक-दूसरे के दुश्मन बन गए। इस परिस्थिति के लिए 'अर्थ' ही जिम्मेदार है। लोगों के आर्थिक स्तर में सुधार हैं तो अपने-आप ग्रामीण जिन्दगी में परिवर्तन हो सकता है। ग्रामीण समाज में घर में कमानेवाले कम और खानेवाले ज्यादा हो तो लोगों का आर्थिक स्तर कभी भी उँच्चे स्तर पर नहीं पहुँच सकता। जब तक इस दूरी को मिटाया नहीं जा सकता तब तक यह स्थिति बदल नहीं सकती।

ग्रामीण समाज में अर्थाभाव के कारण ही लोग अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दे पाते। जिसके कारण ग्रामीण समाज में अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास, रूढि-प्रथा-परम्परा आदि समस्याएँ पनप रही हैं। अगर इन बच्चों को उँची शिक्षा देनी है तो पहले इन लोगों को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनी होगी। ग्रामीण समाज में लडकी का विवाह यह भी एक कठीण कार्य बना है। फिर भी यह लोग कर्जा लेकर या खेती, मकान गिरवी रखकर लडकी का विवाह करते है और साहूकारों का यह कर्जा जिन्दगी भर चुकाते रहते है।

ग्रामीण समाज में अर्थाभाव की वजह से नई संतान के आगमन से खुशी से ज्यादा चिंता होती है क्योंकी उनके आगे उन बच्चों को पालने-पोसने की समस्या है। "आर्थिक स्थिति ठिक न होने के कारण निम्न मध्य वर्ग अशांत जीवन जीने लगता है। उसे वक्त पर खाना भी नहीं मिलता है। पेट की आग बुझाने के लिए कभी वह दिन में एकाध बार खाता है तो कभी चाय नाश्ते से काम चला लेता है।"[1] ग्रामों में व्यक्ति अगर बीमार पडता है तो उसे दवा-दारू के लिए पैसे खर्च करना, डॉक्टर को दिखाना, उसका इलाज कराना आदि संभव नहीं होता वह केवल आर्थिक परिस्थिति के कारण ग्रामीण समाज के लोगों को अनिश्चित आमदनी होने के कारण उनकी तरफ समाज हिराकत की दृष्टि से देखता है। आज लोग अर्थ के प्रति आसक्त दिखाई देते है जब की यह बात वास्तविक और

सच भी है ऐसा कहा तो अनुचित न होगा। आज अर्थ पर ही सब कुछ निर्भर है। अर्थाभाव मनुष्य को अपराधिकरण की प्रवृत्ति की ओर आकर्षित करता है। अत: रोटी, कपड़ा और मकान यह इन्सान की मूलभूत आवश्यकताएँ है जिसकी उपलब्धता के लिए 'अर्थ' महत्त्वपूर्ण है।

3.2 ग्राम जीवन और आर्थिक दशा :-

देश को आजादी मिलने के पश्चात हमारी अपनी सरकार आयी। संविधान नीति के अनुसार सरकार ने खेती में सुधार के लिए विविध सरकारी विकास योजनाएँ चलाई। जिसके फलस्वरूप ग्रामीण लोगों के जीवन का आर्थिक स्तर उँचा हो सके। सरकार अच्छी तरह जानती थी की 70 प्रतिशत लोग ग्रामों में रहते हैं और उनका व्यवसाय खेती है। हमारा देश खेती प्रधान है अत: खेती ही हमारे देश की रीड़ की हड्डी है। आर्थिक स्थिति के उतार-चढाव के कारण ग्रामीण समाज-जीवन में परिवर्तन होता है और उसमें असंतुलन निर्माण हो जाता है। परिणामत: सामाजिक स्तर बिघडने पर ग्रामीण लोगों को अनेक समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पडता है। आजादी के बाद सरकार द्वारा ग्रामों के विकास के लिए प्रयास और नेताओं तथा सरकारी अधिकारियों के भ्रष्ट नीति से ग्रामीण लोगों को अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है। इसलिए ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष के अंतर्गत ग्रामों की गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, लोगों की नगरों के प्रति आकर्षण और ग्रामों के प्रति उदासिनता आदि समस्याओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

भारत कृषि प्रधान देश है। इसलिए जादा तर लोग ग्रामों में रहकर खेती ही करते है। उनका जीवन खेती पर निर्भर रहता है और खेती बारिश पर । कभी-कभी समय-समय पर बारिश न होने से या भारी वर्षा से फसले, जानवर, मकान आदि बरबाद होती है। इसका गहरा असर ग्रामीण लोगों के जीवन पर पडता है। उनकी आर्थिक स्थिति पूरी तरह छिन्न-भिन्न होती है। ऐसी हालत में उन्हें मजबूरन अपने जेवर बेचने पडते है। सेठ साहूकारों से कर्जा लेना पडता है अथवा अपनी जमीन उसके पास गिरवी रखनी पडती है। पूँजीपति, साहूकार लोग इस परिस्थिति का लाभ उठाकर गरीब, मजदूर किसानों पर अत्याचार करते है, उनका आर्थिक शोषण करते है। ग्रामीण समाज में स्थित किसान परम्परागत पद्धति से खेती करते हैं। इससे खेती से अधिक उत्पन्न नहीं मिल रहा है और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो रहा है। औद्योगिकरण के कारण ग्रामों में चलनेवाले छोटे-छोटे व्यवसाय बंद हो गए और लोग दिन-ब-दिन बेकार हो गए। इस तरह खेती के उत्पादन की अनिश्चितता, परम्परागत ढंग से खेती करने की पद्धति, ग्रामों के सुधार सम्बन्धी सरकारी योजनाओं

की सफलता तथा छोटे-छोटे व्यवसाय बंद होना आदि से ग्रामों की आर्थिक स्थिति और गति बिगड गयी है।

नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में ग्रामों की स्थिति के विविध आधारों को स्पष्ट किया है। अत: अर्थ की अनिवार्यता है परंतु ग्रामों में प्राप्ति की बडी समस्या है, ऐसा लगता है।

3.3 नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक स्थिति :-

उपन्यासकार नागार्जुन एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न अनेक विविधताओं के सजग रचनाकार है। निम्न वर्गीय समाज की वेदनाओं और उनकी समस्याओं के चितेरे नागार्जुन ने अपने हिंदी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया। उन्होने अपने उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों में स्थित सामजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संदर्भों के अलावा आर्थिक संदर्भों का भी विवरण दिया है। भारत की लगभग 70 प्रतिशत श्रमजीवी जनता गाँवों में रहती है। इसी आधार पर भारत को 'गाँवों का देश' कहा जाता है। भारत की अधिकांश सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याएँ ग्रामीण अंचल से जुडी हुई है। यही कारण है कि हिन्दी कथा साहित्य के पहले सर्वाधिक प्रगतिशील चेतना संपन्न कथाकार मुन्शी प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण समाज की तत्कालीन समस्याओं को यथार्थ धरातल पर उठाया था। उनके पश्चात सच्चे अर्थ में साम्राज्यवाद सामंतवाद, विरोधी परम्परा के उत्तराधिकारी नागार्जुन ही है।

ग्रामीण समाज अर्थाभाव के कारण ही पिछडा हुआ है। अर्थाभाव के कारण वहाँ के लोग अपने बच्चों को ठिक तरह से शिक्षा नहीं दे पाते। जिसके कारण ग्रामीण समाज में अशिक्षा, अंधश्रद्धा, रूढि-प्रथा, परम्परा आदि समस्याएँ बढ़ रही है। इसी वास्तविकता को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने अनेक विकास योजनाएँ चलाई ताकी ग्रामीण लोगों का आर्थिक स्तर उँचा हो सके। लेकिन समाज में स्थित सरकारी अधिकारी और भ्रष्ट नेताओं के कारण यह सुविधाएँ ग्रामीण लोगों तक पहुँच ही नहीं। अत: इन समस्याओं का यथार्थता से नागार्जुन ने अपने उपन्यास साहित्य में चित्रण किया है। भारत की ग्राम व्यवस्था आत्मनिर्भर थी। अंग्रेजों ने पहले इसे ही ध्वस्त किया। सन 1793 से अंग्रजों ने जमीनदारी प्रथा का आरम्भ किया, और तब से ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति और भी बिगडती गयी। अंग्रजों ने आगे चलकर किसानों से लगान वसूल करना आरम्भ किया। जिसके कारण किसानों के कन्धें पर आर्थिक दबाओं का और एक भारी बोझा डाल दिया। किसानों की प्राकृतिक विपदाओं के कारण फसल ठिक न होने पर भी लगान पूरा देना पडता था और

किसानों को लगान देने के लिए साहूकारों-सूदखोरों से कर्जा लेना पडता था। या फिर लगान न दिये जाने पर उनकी जमीने जमींदारों द्वारा छीन ली जाती थी। जनसंख्या भी अत्याधिक बढ़ने से भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गयी। इसका जिक्र नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है।

आज सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए सड़क निर्माण, स्वास्थ्य के लिए अस्पताल, पाठशालाएँ, पीने के पानी की सुविधा, खेती के लिए सिंचन, बिजली, नए खाद बीज की उपलब्धि, सरकारी बँक में ऋण की सुविधा, कृषि और औजारों के लिए सहाय्यता आदि कई योजनाएँ चलाओी है। जिसमें ग्राम जीवन धीरे-धीरे विकासोन्मुख हो रहा है। साहित्य में इसके दर्शन हो रहे है। नागार्जुन ने इस पर कहाँ तक प्रकाश डाला है उस पर यहाँ सोचेंगे -

3.3.1 कृषि व्यवस्था :-

भारतीय कृषि प्रकृतिपर निर्भर है। कभी-कभी समय पर बारिश न होने से या भारी होने से फसले, जानवर, मकान आदि की बर्बादी होती है। इसका गहरा असर ग्रामीण लोगों पर होता है। गरीब मजदूर और किसानों को तथा छोटे-छोटे व्यवसाय करनेवालों को गरीबी के कारण जीवनयापन करना मुश्किल हो जाता है। भारतीय ग्रामों की स्थिति में कोई विशेष रूप से परिवर्तन नहीं हुआ। इससे गरीबी, बेराजगारी बढ़ती गई और सेठ, साहूकारों तथा पूँजीपतियों द्वारा सामान्य लोगों का शोषण होता ही रहा। आजादी के बाद हमारी अपनी सरकार आयी। सरकार जानती थी कि देश को विकसित करना हैं तो खेती में सुधार करना चाहिए। देखा जाय तो हमारे देश की अर्थव्यवस्था भी खेती पर ही निर्भर है। इसलिए सरकार ने खेती सुधार के लिए अनेक नवीन विकास योजनाएँ चलाई। जैसे की - किसानों को खेती के विकास के लिए कर्ज देना, खेती विषय में जानकारी देना, ग्राम सभाओं का आयोजन करना, जल बचाव योजना, पेड लगाओ देश बचाओ, मृद संधारण संरक्षण उपायोजना, जलसिंचन योजनाएँ, कुआँ खोदना, बाँध निर्माण करना आदि योजनाएँ सरकार भारतीय किसानों के लिए चला रही है जिसके फलस्वरूप गाँव विकास की ओर बढ़ रहे है। किन्तु यह सरकारी योजनाएँ असल रूप में ग्रामों तक पहुँची नहीं। सरकारी अधिकारी एवं भ्रष्ट लोगों ने भ्रष्टाचार कर सामान्य लोगों को मिलने वाली खेतीविषयक विकास योजनाएँ तथा मदद को बीच में हडप कर ली।

आधुनिक काल में औद्योगिकरण प्रक्रिया शीघ्रता से बढने लगी। औद्योगिकरण से ग्रामों में चलने वाले छोटे-छोटे व्यवसाय बंद हो गए और लोग बेकार हो गये। इस तरह खेती में काम करनेवाले मजदूर गाँव छोडकर शहरों में जाने लगे। उनकी ग्रामों के प्रति उदासिनता और शहरों के प्रति आस्था के कारण ग्रामों की स्थिति और भी बिघड गयी। दूसरी एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, भारत के ग्रामों में रहनेवाले किसान परम्परागत पद्धति से खेती करते थे। इससे खेती से अधिक उत्पादन नहीं मिलता और किसानों की आर्थिक स्थिति और भी चिंतनीय होती है।

कृषि क्षेत्र में जमींदार और किसानों के बीच संघर्ष दो प्रमुख कारणों से हुआ है - एक जमींदारी प्रथा उन्मूलन कानून से बचने के लिए जमींदारों ने अपनी जमीनें रोजी पर दी या अपने सगे संबंधियों के नाम कर दी और दूसरा प्रमुख कारण - किसानों की जमीन से व्यापक स्तर पर बेदखली है। ''इसप्रकार नागार्जुन उच्च वर्ग के अन्तर्गत जमींदार पूँजीपति वर्ग के भ्रष्ट और विलासी चरित्र का उद्‌घाटन करते हैं और पाठक के मन में उनके प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं। यह वर्ग भ्रष्ट शोषक अत्याचारी और अन्यायी ही नहीं बल्कि 'राष्ट्र' विरोधी है।''[2]

'नागार्जुन का सीधा सम्बन्ध निम्न मध्य वर्ग और निम्न वर्ग से रहा है। किसान निम्न मध्यवर्ग अन्तर्गत आते हैं और खेतिहर मजदूर व अन्य, निम्न वर्ग के अन्तर्गत। नागार्जुन प्रगतिशील चेतना सम्पन्न कथाकार है, जिसने गाँव के सामन्त-जमींदार- सूदखोर महाजन के द्वारा किसान मजदूर पर किए गए अत्याचार, शोषण और अन्याय को प्रत्यक्ष रूप में देखा है। वे उनके सहभागी रहे है। यही कारण हैं कि नागार्जुन की सहानुभूति शोषित, उत्पीडित, श्रमजीवी किसान-मजदूर के साथ हमेशा रही है।''[3] इस तरह खेती के उत्पादन की अनिश्चितता, परम्परागत पद्धति से खेती करना, ग्रामों के सुधार सम्बन्धी सरकारी योजनाओं की असफलता तथा ग्रामीण भागों में छोटे-छोटे व्यवसाय होकर इन सब समस्याओं में जब तक सुधार नहीं आता तब तक भारतीय कृषि व्यवस्था विकसीत नहीं होगी यह कहना अनुचित न होगा।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में प्रकाशित नागार्जुन के उपन्यास में नारी के दयनीय स्थिति के बारे में विचार किया है। लेखक ने यहाँ पर कहीं-कहीं कृषि के बारे में भी कुछ विवरण दिये है। चुम्मन झाँ के जमीन के बारे में, फसल उत्पादन के बारे में तथा आमदनी के गारे में कहा गया है जैसे की, ''चुम्मन झाँ के पच्चीस बीघा जमीन थी उपजाऊ। चार सौ मन धान साल-साल होता था। एक बडा-सा कलम बाग था जिसमें कलमी आम के पचासों पेड थे। चुम्मन झाँ पाँच पेड

छोडकर बाकी घटी के हात बेच लिया करते। कभी-कभी पाँच सौ, छः सौ तक मिल जाते। इस तरह आम भी इनके लिए एक अच्छी फसल थी।''[4] इस प्रकार ग्रामों में खेती की स्थिति थी और खेती के बलबुते पर मिलनेवाले आमदानी अनिश्चित स्वरूप की थी।

'बलचनमा' (1952) में प्रकाशित उपन्यास में बलचनमा नामक साधनहीन किसान की यातनापूर्ण जीवन की कथा है। यहाँ पर लेखक ने कृषि के बारे में भी कुछ विवरण दिया है। यहाँ पर बलचनमा गन्ने की खेती करे या तमाकू की इस दुविधा में है, लेकिन यह निर्णय तो खेत मालिक पचकौंडी बाबू ही करनेवाले थे। बलचनमा इस बारे में कहता है - एक तो मैंने तय किया कि अबकी गन्ने की खेती जरूर करेंगे, दूसरी बात जो सोच-सोचके पक्की की वह तो पत्तोवाली तमाकू की खेती करने के बारे में। मेरे घर से दच्छिन पचकौंडी बाबू की थोडी जमीन पडती थी। उसको उन्होंने बेआबाद छोड रखा था। खाते-पिते आदमी थे - बेटा राज में तहसील था। सतरंज खेलने का भारी सौख था। इसमें पंडितजी उनके जोडीदार थे, वही पंडित बौअन पाठक ?

पूछने पर पतकौंडी बाबू ने कहा - ''तमाकू नहीं, आलू उपजा सके तो ठीक हैं, नहीं तो नहीं।''[5] यहाँ पर खेत मालिक के ऊपर निर्भर रहता हैं कि कौन सी फसल लेंगे न की जो खेती करता है उस पर। इस मुद्दे को लेकर निकोलस लैंग्वे ने यह प्रमाणित किया कि, ''मजदूरी यह काम करनेवाला श्रमिक सबसे बुरे किस्म की दासता का शिकार होता है। ''[6] इससे स्पष्ट होता हैं कि यह मध्यम वर्ग के किसान का कई पूँजीवादी और समाजवादी व्यवस्था के बीच का एक पक्ष ही है।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में कृषि की बात को लेकर लेखक ने किसान वर्ग के अंतर्गत चतुर ठाकूर और खेतीहर दोनों के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''पहले यह बाँध खूब चौडा था, अठराह हाथ या नौ गज कम नहीं हुआ करते। अब आधा रह गया है। किनारे-किनारे जिनकी जमीनें पडती है, कुदलधारी उन चतुर किसानों की कृपा से इन पुरानें राजमार्ग का कलेवर दिन-पर-दिन कृश होता आया है। छोटा खेतिहार होता एक आध तो उँगली डालकर कोई बता भी देता और वह मान भी लेता अपना कसूर।''[7] फसल की स्थिति अथवा कौन-कौन सी फसले थी इस बारे में लिखा है -''पूरब की और झील लहरा रही थी। पश्चिम कुछ खेतों में पार के पौधे लहलहा रहे थे। उँची सतह के खेत की उस ओर थे जिनमें चिना, साँवा और महुआ की फसलें खडी थी। दच्छिन में दूर तक धान के निरोग पौधों की घनी खेती छा रही थी और धमियापट्टी के लिपी पुती भीतोंवाले घर जगमगा रहे थे।''[8] यहाँ फसलों की स्थिति तथा नस्लों का विवरण दिया है।

यहाँ स्पष्ट है भारतीय जनजीवन का आधार जन और जन में स्थित किसान वर्ग है। भारत कृषि प्रधान देश है यहाँ तक की हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारीत है। ऐसा कहा तो अनुचित नहीं होगा। इसलिए सरकार कृषि व्यवस्था में सुधार लाने के लिए तथा उसका विकास होने के लिए नवनवीन योजनाएँ चला रही है परंतु भ्रष्ट नेता और सरकारी अधिकारियों की वजह से यह योजनाएँ वहाँ तक नहीं पहुँच पा रही है। इसके साथ-साथ कृषि व्यवस्था, फसल की स्थिति, फसलों की नस्ले, तथा किसान वर्ग की स्थिति के बारे में यहाँ चर्चा की है जो हमे तर्कसगत लगती है।

3.3.2 जमींदारों की नीति :-

ग्रामीण लोगों की जीविका खेती पर निर्भर रहती है। ग्रामीण लोगों को अर्थाभाव के कारण रोजमर्रा की जिन्दगी में जमींदारों के पास जाना पडता। यह गरीब किसान वर्ग उनसे कर्ज लेते हैं, मजदूरी के लिए उनके यहाँ जाते है। यह लोग अज्ञानी, अशिक्षित होने के कारण जमींदार सदियों से उनका शोषण करते आये है। जमींदार लोग इन गरीब मजदूरनियों, मजबूर नारियों को भोग्या समझकर, डरा-धमकाकर, उन पर मन चाहा अन्याय, अत्याचार करते हैं। दिन दहाडे चलनेवाले इन अत्याचारों के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाता। नागार्जुन के उपन्यासों में जमींदारी वर्ग अत्याचारी तथा सामन्तीवादी प्रवृत्तियों को बनाये रखने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। कानून से जमींदारी प्रथा पर रोक लगाई है, मगर जमींदारों की प्रवृत्ती आज भी समाज में दिखाई देती है। उनकी नई-नई प्रवृत्त शोषण नीति, दमन चक्र के हथकंडे आदि के दर्शन उपन्यासों में होते है। जैसे मजदूरी देने से इन्कार करना, किसानों की जमीन हडप करना, मजदूरों-किसानों की पिटाई करना, उनपर झूठे आरोप लगाना,उन्हें जेल भेजना इसके लिए गन्दी राजनीति का सहारा लेना आदि कहीं रूपों में जमींदार अपनी कुनीति के हथकंडे अपनाते है और ग्रामीण लोगों का शोषण करते है। इसका यथार्थ तथा सटीकता से चित्रण नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में जमींदार की नीति तथा उनकी सूदखोरी वृत्ति पर प्रकाश डालते हुए लिखते है, ''इस मौजे के मालिक रायबहादूर दुर्गान्दसिंह बडे जमींदार थे। आस-पास की पाँच कोस जमीन पर उनकी छत्र छाया थी। तीन लाख रूपये पच्चीसों के इन समुद्र में दाँत निपोडे पूँछ कडी किये मगरों की भाँति टहल-बूल रहे थे। ब्याज का दर प्रतिमास डेढ रूपये सैंकडा था। राजा पुराने अंगूठे को साल-साल नया करवाते जाते। सूद भी मूल बन जाता। चक्रवृद्धि का यह क्रम राजाबहादूर के शरीर वृद्धी के लिए रसायन का काम कर रहा था।''[9] इस प्रकार जमींदार ग्रामीण

किसान लोगों का आर्थिक शोषण करते थे। कुल्ली राऊत बेगार प्रथा का शिकार है। रतिनाथ उसके बारे में सोचता है - "हमारा जूठन खाकर, हमारा पहिरन पहनकर उनके बच्चे पलते है। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द क्या औरत इन लोगों का जीवन बडी जातीवालों की मेहरबानी पर निर्भर है।"[10] यहाँ पर लेखक ने गरीब दूसरों पर अवलम्बित होते है इसकी ओर संकेत किया है।

कुल्ली राऊत से काम करवाने पर भी तो उसे कुछ नहीं देना या कभी काम के बदले बहुत थोडा दिया जाता है। इस प्रकार बेगार-प्रथा के द्वारा जमीनदार श्रमिकों का शोषण करते है। राजा बहादूर ने किसानों की दस बीघा जमीन जयदेव को लिख दि। सिर्फ छः सौ रूपये लेकर। यह बात मालूम होरे पर किसान गुस्से से पागल हो उठे।

नागार्जुन के 'बलचनमा' (1952) का नायक खुद बलचनमा इस जमींदारी शोषण का शिकार है। इसका चित्रण कुछ इस प्रकार है - मलिकाईन द्वारा बलचनमा को अपने पुत्र को रूलाने के आरोप में गालियाँ देना, सडी हुई चीजें खाने को देना, न खाने पर खाना बंद करना, माँ को दिए गये बारह रूपये का सूद लेते रहना, माँ की जमीन आम के लिए चापलूसी करके बिना रसीद लेना, मालकिन का चढे दामों पर धान बेचना, ब्राह्मणी और करीमबख्श को देते समय छोटे तथा लेते समय बडे बाट से धान तोलना आदि जैसे जमींदारों के शोषित नीति का शिकार ग्रामीण जनता होती थी। अपनी माँ पर किये अत्याचारों पर नजर डालते हुए बलचनमा कहता है, "मझले मालिक सौ कसाई के एक कसाई थे। बाबू के मरने पर बारह रूपये उन्होंने माँ को कर्ज दिए थे। बदले में सादे कागज पर अंगूठे का निशान ले लिया था। सूद देते-देते हम थक गये, मूर ज्यो का त्यो खडा था। छोटी मल्लिकाईन दुअन्नी के हिसाब से सालभर का दरमहा डेढ़ रूपैया देती थी, उतने से क्या होता।"[11] इस प्रकार हमे इन सूदखोर जमींदारों की नीति का विवरण मिलता है।

जमींदारों की नीति या कुदृष्टि गरीब किसानों के जमीन के टुकडे पर रहती है जैसे बलचनमा के शब्दों में "मझले मालिक की निगाह हमारे उन थोडे से खेतों पर थी जिसमें मड़आ उपजा कर तीन-चार महिने का खर्च हम निकालते आये थे। उन्होंने - सोचा - लौंडा अभी छोटा है। जमाने का रंग-ढंग अच्छा नहीं। कमाने लायक होने पर करिहार या कलकत्ता कहीं न कहीं जरूर भाग जाएगा, फिर कोई इसका क्या कर लेगा। अभी तो खैर इस बात औरतिया का अंगूठा निशान अपने कब्जे में है।"[12] यहाँ पर जमींदारों की आगे की सोच का पता चलता है तथा वे बहुत चालाखी किस्म के

लोग होते है। जमींदार हमेशा गाँवों में मजदूरिन बहू-बेटियों पर बुरी नजर डालते उन पर अत्याचार करते थे। बलचनमा कहता हैं - "हमारा गाँव जमींदारों का था। बड़ी घरों के क्या जवान क्या बूढे, बहुतेरों की निगाह पाप में डूबी रहती थी। गौना होकर कोई नई नवेली किसी के घर आती तो इन लुच्चों की आँख उसकी घूँघट के इर्द-गिर्द मँड़राया करती। जब तक आधी-पौली निगाह से ये उसे देख न लेते तब तक नींद न आती बदमाशों को। कहीं बार ऐसा होता कि जिसे देखने को बाप बेताब हो उठता उसी पर बेटा भी फिदा। उन दिनों मालिक लोगों का ही राज था।उनकें खिलाफ तुम अपनी कानी उँगली तक न हिला सकते थे। किसी की इज्जत आबरू भी बेदाग रहने देना उन्हें बर्दाश्त नहीं था।"[13] इस प्रकार जमीनदार गरीब, असहाय स्त्रियों पर अत्याचार करते थे। "जन बनिहार कुली - मजूर, बनिया-खवास, गाँव की विधवाएँ और दुसरी सताई जाती रही स्त्रिया धर्म के नाम पर पलनेवाली धूर्तताएँ और पाखंड इन सब तानो-बानों से नागार्जुन के कथासाहित्य का विशाल कैनवास तैयार होता है। उनका संपूर्ण साहित्य उन साधारण लोगों का साहित्य है, जो अपनी मेहनत, निष्ठा और ईमानदारी के बावजूद एक और नाटकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।"[14] इस प्रकार जामींदार ग्रामीण स्त्रियों पर अत्याचार करते थे। भारतीय नारी की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए चंडीप्रसाद जोशी कहते है - "भारतीय समाज में नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीड़ित रहा, अछूत वर्ग से भी अधिक।"[15]

अंग्रेजों ने जमीनदारी प्रथा का निर्मुलन किया। आगे चलकर यह जमींदार किसानों के उपर लगान का बोझ डालने लगे। जिससे गरीब किसान को आर्थिक विपन्नताओं का सामना करना पडा। बलचनमा के शब्दों में - "जमींदार खानबहादुर सादुल्ला थे। रैयत हिंदू-मुसलमान सभी जात की थी। आठ-दस मौजे की मालगुजारी आती थी। वह खुद ढाई-तीनसौ बीघा ही रखे हुए थे, बाकी हजारों बीघा जमीन मनखप लगी हुई थी। मनखप समझा भैया ? नहीं? अरे भाई उपज का सोलहवाँ बीसवाँ या दसवाँ हिस्सा मालिक वसूल करता है। जिन्सी लगान के तौर पर , एक मन बीघा, दो मन बीघा या तीन मन ..... उतना अनाज या उतने ही रकम जा कर मालिक के यहाँ जमा कर दो।"[16] यहाँ स्पष्ट है कि गरीब किसान खेती में अच्छी फसल आए इसलिए अपना खून-पसीना बहाता है मगर उपज का दसवाँ हिस्सा मालिकों को देना पडता है। बिना श्रम किए उपज खुद के घर में लेने जमींदारों की प्रवृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही है - इस पर नागार्जुन ने यथार्थ रूप में प्रकाश डाला है।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में नागार्जुनजी ने एक वटवृक्ष के माध्यम से पीढ़ि दर पीढ़ियों में जमींदारों द्वारा निर्धन जनता पर किये गये अत्याचार एवं शोषण की कथा प्रस्तुत की है। सौ वर्ष पूर्व पंडित चंद्रमणि के दुश्चरित्र घेवते बलिभद्दर से कैफियत तल करने पर राजा बहादुर के सिपाहियों ने जीवनाथ के दादा शत्रुमर्दनराय को लाल चीटों के दत्ते से कटवाकर कोडे लगवाये थे। बाद में जमींदारी उन्मूलन के प्रारंभ होने पर जमीनदार सार्वजनिक उपयोग की भूमियों को धीरे-धीरे बेच देते है। लोभी किसान टुनाई पाठक और जैनरायन झा ने राज बहादुर से बरगदवाली जमीन और पोखर की बंदोबस्ती ली थी। वह बरगद कटवाना चाहते थे। दरभंगा के महाराजा ,दरबारियों और अफसरों को सौगात स्वरूप पत्र भेजने की अपेक्षा बेचकर लाभ कमाने लगे। इनके बारे में बाबा बटेसरनाथ कहते है, ''जाते-जाते भी ये राजा जमीनदार, भूस्वामी, सामंत चाँदी काट रहे है। घोडे की किमत पर वे हाथी हटा रहे है, बछडे की किंमत पर घोडा, और बछडा।''[17] कम दाम में वस्त्र खरिदना, हपडने की मतलबी नीति यहाँ पर जमींदारों की है परंतु यहाँ पर गरीबों का शोषण होता है।

जमींदार अपने इलाके के सर्वेसर्वा थे अत: गरीब जनता पर जुल्म करना उनके लिए कोई कठीन काम नहीं था। बाबा का कथन देखिए, '' आज तो इन बातों पर सहसा विश्वास नहीं करेगा कोई , किन्तु सौ वर्ष पहले दर-असल अपने इन इलाकों का जमीनदार सर्वेसर्वा हुआ करता था। रिआया के बेठ-बेगार लेना उसका सहज अधिकार था। वह रोब ! वह दब-दबा! वह अकडा! वह शान! वह तानाशाही ! वह जोर ! वह जुल्म ! क्या बताऊँ बेटा ?''[18] इस प्रकार ग्रामीण जनता जमींदारों के पैरोतले पीसी जा रही थी, जब चाहे तब दबाये। जमींदार अपनी ताकत से जबरन गरीब किसानों की जमीन हडप करते थे अथवा उस पर अपना कब्जा जमाते थे। इस बारें में बाबा बटेसरनाथ कहता है, ''दस बारा वर्ष पहले की स्थिति तो अब रही नहीं, जब की जमींदार रातो-रात खेत बन्दोबस्त दे देते थे और चुटकी बजाते बजाते इन खेतों पर कब्जा भी अपना हो जाता था।''[19]

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में चित्रित जमींदारी वर्ग लाचारी तथा सामन्ती प्रवृत्तियों को बनाये रखने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। जमींदारों की नीति, दमन चक्र के हथकण्डे आदि के दर्शन उपन्यासों में होते है। जैसे की मजदुरी देने से इन्कार करना, किसानों की जमीने हडपना, उनसे बेगारी लेना, मजदूरों किसानों की पिटाई करना, उनकी नारियों की दिन-दहाडे इज्जत लूटना, उन पर झूठे आरोप लगाना, उन्हें जेल भेजना, गंदी राजनीति का सहारा लेना आदि हथकंडो से जमींदारी कुनीति के दर्शन हमें नागार्जुन के उपन्यासों में देखने को मिलते है।

''नागार्जुन ने अपने कृतियों में जमींदारी के शोषण की निर्ममता और क्रूरता के लोमहर्षक दृश्य अंकित किये है। उनके उपन्यासों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि दमन और शोषण का जो कुचक्र जमीनदारों ने चलाया था वह अंतहिन प्रक्रिया के रूप में आज भी विद्यमान है।''[20]

स्पष्ट है जमीनदारों की घिनौनी, मतलबी, वृत्ति के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति सोचनीय बनी है। फसल की किमत अच्छी आने पर भी अधिकतम लाभ जमींदारों को मिलता है। असल में लगान देना किसानों का कर्म था, मुनाफा कमाना जमींदारों का धर्म बनने से ग्रामीण किसान की वित्तिय हालत खराब ही रही।

3.3.3 सरकारी योजनाएँ :-

भारत कृषिप्रधान देश है। 70 प्रतिशत लोग ग्रामों में रहते है। भारतीय ग्राम सदियों से पिछडे हुए है। अत: ग्रामों में रहनेवाले लोगों का सामाजिक जीवन भी पिछडा रहा है। सामाजिक जीवन में परिवार, शिक्षा, जात-पाँत, छुआछूत, रूढि एवं परंपरा, अंधविश्वास, जमींदारों द्वारा शोषण, अन्याय, अत्याचार, और भ्रष्टाचार के कारण ग्रामों का विकास नहीं हुआ है। आजादी के पहले विदेशी शासन ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रयास किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। भारतीय ग्रामों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आजादी के बाद हमारी अपनी सरकार आई। सरकार जानती थी देश को विकसित करने के लिए खेती में सुधार करना चाहिए। अत: सरकार ने ग्रामों के विकास के लिए विविध सरकारी विकास योजनाएँ चलाई। जैसे की सर्व शिक्षा अभियान, एक गाँव - एक पनघट, संत गाडगेबाबा स्वच्छता अभियान, एक पेड एक बच्चा, प्रौढ शिक्षा अभियान, जलसिंचन ,मृदसंधारण या संरक्षण योजना, खेती के लिए कर्ज, ग्राम स्वच्छता, विकास सेवा सोसायटी, पोलिओ निर्मूलन, मुफ्त नेत्र चिकित्सालय शिबिर, स्वास्थ्य विषयक सुविधाएँ, सड़क योजना, यातायात के साधनों की व्यवस्था आदि सरकारी सुविधाओं का आरंभ किया। इससे गरीब जनता, पीड़ित किसान, अत: संपूर्ण ग्रामीण व्यवस्था में सुधार आया, उनका विकास होने लगा। इसके साथ-साथ लोगों के विकास के लिए उनकी गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे-छोटे व्यवसाय शुरू किए। किन्तु सरकारी योजनाएँ ग्रामों तक नहीं पहुँची। गरीब, असहाय तथा बेरोजगारों को जो मदद दी जा रही थी वह उन तक नहीं पहुँची। उनका लाभ पूँजीपति, जमीनदार, भ्रष्ट नेता, और सरकारी अफसरों ने उठाया। नेता, सरकारी अधिकारी एवं भ्रष्ट लोगों ने भ्रष्टाचार कर सामान्य लोगों को विकास योजनाओं से मिलनेवाली मदद बीच में ही

हडप कर ली। भ्रष्टाचार के संदर्भ में डॉ. अनिता का कथन है, ''आज सर्वत्र नौकरशाही,भ्रष्टाचार, दाँवपेंच की राजनीति और नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है जिसके जिम्मेदार हमारे नेतागण है।''[21] स्वार्थी वृत्ति के कारण मानवीय मूल्य, नैतिकता, आदर्श आदि का पतन हुआ। ''ग्रामीण समाज में जिस प्रकार एक खास तरह की जाति और वर्ग का स्वरूप उभर रहा है। जिसमें जमींदारों और अमीरों, किसानों जैसे उभरते हुए वर्ग पर जो सुविधाओं की बोछार हो रही है, पर इसके लिए गाँवो की गरीब जनता को कंगाल तथा सर्वहारा बनाया जा रहा है।''[22] इससे स्पष्ट होता है कि आजादी के पश्चात एक ओर विकास योजनाओं का दौर चल रहा है। साथ-ही-साथ सामाजिक प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ है।

ग्रामों में आर्थिक विपन्नता और अज्ञान के कारण लोग शिक्षा के प्रति इतने जागृत आकर्षित नहीं हुए है लेकिन आजादी के बाद भारत सरकार ने शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक विकास योजनाएँ बनाई। लेकिन उसका असर ग्रामीण जनजीवन पर विशेष नहीं पडा। ग्रामों में शिक्षा प्रसार एवं प्रचार के कारण ग्रामों का स्वरूप बदलने लगा। डॉ. ज्ञानचंद गुप्त कहते है, ''परम्परा और प्रगति अंधविश्वास और विज्ञान स्वार्थ लिप्सा और सरलता का संघर्ष गाँव की जीवन स्थिति को नई भंगिमा प्रदान कर रहा है।''[23] आज शिक्षा व्यवस्था के कारण पुराने रीतिरिवाज नहीं रहे। इस प्रकार आज सरकारी विकास योजनाओं के कारण हमारा देश विकसित होने के पथ पर है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में आजादी के पश्चात अपनी सरकार आयी और संविधानिक तौर पर नवीन विकास योजनाओं का विस्तार हुआ इसका चित्रण है - ''बार-बार आगा-पीछा सोचकर काँग्रेसने जब प्रान्तों के शासन में हाथ बँटाना स्वीकार कर लिया तो जनता ने युग की ओर नई आशा से देखा । मिनिस्टरी कबूल करने पर नेताओं का उत्तरदायित्व बेहद बढ गया।''[24] इस प्रकार हमारी मिनिस्टरी आने के बाद कांग्रेसने शासन में हाथ बँटाना शुरू किया।

'बलचनमा' (1952) में नागार्जुन ने विकास योजनाओं की चर्चा की है। बलचनमा बहन रेबनी को कहता है - ''रेबनी से मैने पूछा - तुझे इतना भी नहीं सुजा की भैया को ए गो (एक) पोसकाट लिखवाकर भेज देती।

मैया ने मना कर रखा था - वह बोली।

मुझे रेबनी की अकल पर तरस आई। इसमें भला अम्मा को पूछने की क्या बात थी। चार अच्छर किसी से लिखवा लेती और टिसन पर ढोल टँगा रहता है। उसमें डाल आती पोसकाट। यह तो

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

ससुराल में अपने नैहर का नाम हँसवायगी, हे भगवान!''[25] इस प्रकार यहाँ पर स्पष्ट हैं कि पोस्ट सेवा यह एक सरकारी योजना जनहित में जारी हैं।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में 'सस्ते राशन' की सुविधा की ओर लेखक ने संकेत किया है, ''पिछले वर्ष जब ऑनरेबल मिनिस्टर पं. श्री. नमोनाथ मिश्रजी श्रीकष्ण पुस्तकालय का उद्घाटन करने के लिए मधुबनी पधारें तो बाढ़पीडित इलाकों के निवासियां ने हजारों की तादाद में आपके समक्ष प्रदर्शन किया था, उनकी माँग थी - कमला नदी में मधुबनी के आस-पास कहीं 'श्लूश गेट' का निर्माण हो और गाँव-गाँव में सस्ते राशन की व्यवस्था की जाय।''[26] यहाँ पर श्लूश गेट तथा सस्ते राशन की सुविधा जनता के लिए करने की माँग की यही चेतना है।

इस प्रकार आजादी के पहले विदेशी शासक ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए विविध विकास योजनाओं को चलाया लेकिन ग्रामों की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आजादी के बाद सरकार ने ग्रामों के विकास के लिए विविध सरकारी विकास योजनाओं को चलाया लेकिन यह सरकारी योजनाएँ ग्रामों तक नहीं पहुँची। गरीब, असहाय तथा बेरोजगारों को जो मदद दी जा रही थी वह उन तक नहीं पहुँची । उनका लाभ नेता, सरकारी अधिकारी एवं भ्रष्ट लोगों ने भ्रष्टाचार कर खुद लिया। इनके स्वार्थी वृत्ति के कारण मानवीय मूल्य, नैतिकता, आदर्श, आदि का पतन हुआ और सच्चे अर्थों में भारतीय ग्रामीण व्यवस्था का विकास बहुत धीमी गति से हो रहा है। सरकारी योजनाओं का लाभ सही ढंग से ग्रामीण जन को नहीं मिल रहा है। परिणामत: आर्थिक स्थिति जैसी थी वैसी ही रही।

3.3.4 गरीबी एवं बेरोजगारी :-

भारत कृषि प्रधान देश हैं। उनका जीवन खेती पर तो खेती बारिश पर निर्भर होती है। अत: बारिश न होने से या भारी वर्षा से फसले, जानवर, मकान आदि की बर्बादी होती है। इन सबका परिणाम ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर पडता है। गरीब किसान, मजदूर, खेतीहरों को अपना जीवन जीना मुश्किल हो जाता है। इस हालत में उन्हें मजबूर होकर अपने जेवर, मकान, खेती गिरवी रखनी पडती है। जमींदार सेठ साहूकार इसी परिस्थिति का लाभ उठाते है और उनका आर्थिक शोषण करते है। बारिश की अनिश्चितता के कारण खेती में काम करने वाले मजदूरों को और गरीब किसानों को रोजगार नहीं मिलता। बढ़ती हुई आजादी और महँगाई के कारण भी ग्रामों में लोगों को रोजगार नहीं मिल रहा है।

आधुनिक काल में औद्योगिकरण हुआ जिसके कारण ग्रामीण भागों में चलनेवाले छोटे-छोटे उद्योग बंद हो गए हैं। जिसकी वजह से वे उद्योग करनेवाले बेकार हो गए। आज शहरों में भी गरीबी है लेकिन देहातों की अपेक्षा कम है। इस संदर्भ में गणेश प्रसाद पंडित का विचार है - ''गरीबी शहरों में भी हैं, लेकिन गाँवों में उसकी स्थिति भयावह है। शहर में राहत के दूसरे रास्ते है लेकिन गाँव में गरीबी रेखा के नीचे रहनेवालों का प्रतिशत भी कहीं अधिक होता है, इसलिए कहा जाता हैं कि गाँव और गरीबी में प्रमेय-प्रमाण संबंध है।''[27] यहाँ स्पष्ट है की ये सब बेकार रोजगार पाने के लिए और जीविका चलाने के लिए दर-दर भटकते रहते हैं। बेरोजगारी की समस्या ग्रामीण लोगों के लिए बहुत भयावह समस्या बनी है। भारत में बेरोजगारी की अधिक तर समस्याएँ ग्रामों में दिखायी देती हैं। सरकारी अधिकारी भ्रष्ट नेताओं के कारण सरकारी योजनाएँ असफल हो रही है जिसके कारण गरीबी, मजदूर, छोटे किसान, पढ़े लिखे युवकों को रोजगार नहीं मिल रहा है अत: गरीबी की मात्रा भी ग्रामीण समाज में दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में कुल्ली राऊत का जीवन जमींदारों की जूठन खाकर व्यतित होता है। तथा रतिनाथ द्वारा किताबों की चोरी करना आदि से गरीबी के दर्शन होते है। रतिनाथ को किताबे खरीदने के बारे में एक प्रसंग दृष्टव्य है, '' जयनाथ को अब यही महत्त्वाकांक्षा थी कि लडका पढ़ लिखकर अच्छा पंडित बने। रतिनाथ था भी पढ़ने मे तेज। उसका मन था हिंदी-अंग्रेजी पढ़ने का, मगर जयनाथ मास्टर को फिस देने में अनाकानी कर रहे थे। जयनाथ को जब पता चला कि चार-पाँच रूपये सिर्फ किताबों में ही लग जायेंगे तो तय किया पैसे नही दे सकता।''[28] किताबों पर पैसे न खर्च करने के जयनाथ के विचार से यहाँ गरीबी के दर्शन होते है।

'बलचनमा' (1952) में खुद बलचनमा जमींदारों के यहाँ काम कराकर उनका जूठन खाकर तथा उन्होंने दिया हुआ पहनकर, ओढ़कर अपना जीवन चलाता है। यहाँ पर भी हमें गरीबी की झलक देखने को मिलती हैं। ग्रामीण समाज में बेरोजगारी भी बहुत थी जैसे की बलचनमा के मुँह से सुनो, ''कुछ ही दिन बाद छोटे मालिक के यहाँ भैंस चराने का काम मिला है।भगवान ! कितनी कठीनाई से और कितना गिडगिडाने पर छोटी मलिकाईन मुझे रखने को राजी हुई।''[29] यहाँ पर स्पष्ट हैं कि देहातों में रोजगार मिलना कितना कठीन कर्म है।

'नई पौध' (1953) में चतुर्भुज जो माहे का पिसा है। वह गरीब था। खोखा पंडित का चचेरा भाई था। पंडीत की जमीन हथियाना चाहता था। चतुर्भुज के मरने के बाद भी खोखा पंडित

माहे की माँ को परेशान करता था। इसी तरह चतुर्भुज को गरीबी विरासत में बाप-दादा से मिली थी। नागार्जुन कहते है - "मूर्खता, गरीबी, दश कठ्ठा उसर खेत और आठ धूर बासभूमि-विरासत में बाप-दादों से बेचारे को यह संपदा मिली थी।"[30] इस तरह गाँव के गरीब लोगों को खोखा पंडित जैसे आदमी अत्याचार, अन्याय तथा उनका आर्थिक शोषण करते थे। यह स्पष्ट होता है।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में गरीबी एवं बेरोजगारी को लेकर नागार्जुन कहते है - "घर और पेठ का काम रूखा गया था। खरीद-खरीदकर चावल-दाल जुटानेवालों के लिए और बेच-बेचकर धन्दा करनेवालों के लिए वे बहुत बुरे दिन थे।"[31] यहाँ पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि, गरीबी एवं बेरोजगारी से ग्रामीण लोगों पर न जाने कितने बुरे दिन आते है।

नागार्जुन का साहित्य जीवन आर्थिक कुंठाओं और घुटन को लेकर लिखा है। उन्होंने भारत के ग्रामों की गरीबी एवं बेरोजगारी देखी है। गरीबी के कारण देहातियों को दैनिक जीवन में यातनाओं को सहना पडता है। इसका करूण और यथार्थ दर्शन नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है।

लगता है जब तक जमींदारों की मनमानी कम नहीं होती तब तक विकास योजनाओं का सच्चे लाभार्थियों तक पहुँचना मुश्किल है। यह प्रवृत्ति सिर्फ कागज से गई, समाज व्यवस्था में आज भी अन्य रूपों में वाद कर रही है। इसी कारण ग्राम जीवन की आर्थिक दशा में परिवर्तन नहीं हुआ, ऐसा कहना अनुचित न होगा ऐसा लगता है।

3.3.5 विभिन्न आर्थिक स्तरियता :-

प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था विभिन्न आर्थिक स्तरों में विभाजित है। मानव समाज सदा से वर्गों में बँधा रहा है। आज की कल्पना में प्राचीन समाज विकसित नहीं था। जैसे - जैसे समाज विकसित होता गया वैसे-वैसे अपने आप ही समाज में जो आर्थिक श्रेणियाँ थी उनमें भी परिवर्तन होता गया। जैसे की आधुनिक कालीन समाज को 'हिन्दी साहित्य कोश' में तीन आर्थिक श्रेणियों में बाँट दिया है -" 1) उच्चवर्ग 2) मध्यमवर्ग अर्थात मिडिल क्लास 3) निम्नवर्ग।"[31] आज का युग 'अर्थ' का युग है। अर्थ के अभाव में जीवन अर्थहीन हो जाता है। अर्थार्जन के लिए लोग विभिन्न व्यवसायों को अपनाते है। इस अर्थ और व्यवसाय के आधार पर सम्पूर्ण समाज की आर्थिक श्रेणियाँ अवलंबित होती है ऐसा कहना अनुचित न होगा। कुछ विद्‌वान इस संदर्भ में अपने विविध मत देते है। जैसे की गोविंद सदाशिव घुर्ये मानते है - "सामाजिक जगत में केवल तीन वर्ग है - 1) पूँजीपति वर्ग 2) श्रमिक वर्ग 3) मध्यमवर्ग।"[32] इस संदर्भ में भूपसिंह भूपेंद्र का मत है -

''वर्तमान समाज में अर्थ के अक्ष से दृष्टिपात किया जाए तो हमारे समक्ष समाज तीन वर्गों मे विभाजित दृष्टिगोचर होता है - उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग।''[33] डॉ. वीणा गौतम सम्पूर्ण समाज को उच्च, मध्य तथा निम्न, इन तीनों वर्गों के बाटने के पक्ष में होकर लिखती है- ''समाज तीन वर्गो को दो - दो उपवर्गों में विभाजित करना असंगत नहीं है।''[24] यहाँ स्पष्ट है अर्थ के आधार पर समाज रचना बनी है। अर्थ के बिना सभी व्यर्थ है यह सच है। ग्रामजीवन में अर्थाभाव के कारण 'अर्थ', 'मतलब', ' महत्व' नहीं रहा।

समाज में हर मनुष्य को अर्थार्जन की होड-सी लगी हुई है। समाज का एक वर्ग अर्थ प्राप्ति से करोडपति बना तो दूसरा वर्ग ऋणपति। जिसके पास एक वक्त की रोटी का भी इंतजाम करना कठीण कर्म बन गया है। इस पर प्रसिद्ध विचारक अरस्तू का मत है - ''प्रत्येक राज्य में तीन वर्ण होते है - एक अत्याधिक धनी वर्ग होता है, दूसरा अत्याधिक गरीब और तिसरा वर्ग मध्यम होता है। मध्यम वर्ग ही उत्तम है क्योंकि यह वर्ग बुद्धी सिद्धांतो पर चलता है। जो व्यक्ति सौंदर्य, शक्ति, कुलिनता या धन-दौलत की दृष्टि से उत्तम है, वह बुद्धीसंगत विवेकपूर्ण सिद्धांतों पर नहीं चल सकता। वह तो उग्र भयंकर अपराधकर्मी हो जाता है या फिर धूर्त, दुष्ट और बदमाश बन जाता है।''[35] इस प्रकार समाज में अर्थार्जन के बलबूते पर व्यक्ति की आर्थिक श्रेणियाँ अवलंबित होती है। इन सभी श्रेणियों के अंतर्गत समाज में डॉक्टर, वकील, अभियंता, चमार, लुहार, कुम्हार, किसान, खेतीहर, मजदूर आदि लोग आते है। नागार्जुन ने ग्रामोस्थित अर्थ प्रधान समाज, सामाजिक स्तर पर सोचा है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में दमयंति जो शतरंज की खिलाडिन है वह गौरी के बारे में कहती है - ''अब इस आँगन में न धोबिन आएगी, न नाईन, न डोमिन, न चमाइन, ब्राह्मणी की तो भला बात कौन कहे।''[36] यहाँ स्पष्ट है गौरी को समाज में लांच्छित होने के कारण दमयंति इन श्रेणियों के व्यावसायिक लोगों को वहाँ न जाने की सलाह देती है। गौरी की माँ से गौरी का बच्चा गिराने के प्रसंग में चमाईन कहती है, ''तुम लोग तो धनवान हो, हाकिम भी तुम्हारी तरफदारी कर लेगा। कितने जोखिम का काम है पेट गिराना। पता चल जाए तो सरकार सत्यानाश कर देगी..।''[37] यहाँ पर स्पष्ट है निम्नजाति की या निम्नवर्ग की चमारिन मध्यवर्ग के गौरी की माँ से धनवान की प्रवृत्ति की आलोचना करती है।

'बलचनमा' (1952) में फसलों की स्थिति अच्छी होने के कारण विविध श्रेणियों के लोग कितने खुश थे यह स्पष्ट करते हुए बलचनमा कहता, "सभी के मुँह पर मुस्कान, सभी की आँखों में कामयाबी की झलक। जिनकी अपनी फसले थी वे भी खुश थे, जिनके नहीं थी वे भी खुश थे। गिरहथ, बनिहार, जन-जनी, कल्लर-भिखमंगा सभी के चेहरे पर आशा की रौनक थी। भिखमंगों को भिख भी मिलेगी, ब्राह्मण देवता को दान भी मिलेगा। और, गिरस्तों का क्या कहना ? मूँडन - छेदन और चालिसा तक सब काम इन्हीं फसलों के भरोसे चलता है। अच्छी फसलें देखकर महाजन को भी कर्जा देने में उत्साह होता है। पुजारी मन्दिरों में दिल से घन्टी बजाते और मन से आरती उतारते है।"[38] यहाँ स्पष्ट है कि फसल अच्छी होने से सभी श्रेणियों को लोगों के चेहर पर खुशी की नहर दिखाई देती है।

'नई पौध' (1953) में दिगंबर के मामा तीन थे। एक जिला सहर्सा में किसी हाईस्कूल का हेडमास्टर था, एक मुक्तापूर की जूट फैक्टरी में असिस्टंट एकाउंटेन्ट और तीसरा मॅट्रिक पास कर चुकने पर जो खेती-गिरस्ती में जुता सो अब घर का मुखिया बन बैठा था।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में नागार्जुन ने जायदाद के आधार पर आर्थिक श्रेणियों का जिक्र किया है। इस बारे में बरगद बाबा जैकिसुन को कहते है - "बडी जातवालों के पास निर्वाह योग्य जमीने थी। ग्वालों और मोमिनों के भी थोडे-बहुत खेत थे। साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनका गुजारा मजदूरी पर निर्भर था। वे काम के लिए पडोस के कई गाँवों तक चले जाते, पचीस-पचास आदमी शहरों में कुलीगिरी या दूसरे मामूली काम करके यहाँ अपने परिवारों की जीविका चलाते थे।"[39] यहाँ पर विभिन्न आर्थिक श्रेणियों के लोगों के बारे में नागार्जुन कहते हैं - "इन देहातों में एक तरफ तो जमींदारों का दबदबा था, दूसरी तरफ कहीं-कहीं नील के कारखानेदार अंग्रेज जमे बैठे थे। बाजारों और शहरों में इधर तब मारवाडी बनिये नहीं आये थे, खरीद-फरोक्त और जमा-पूँजी का सारा कारोबार देसवाली सौदागरों के जिम्मे था। तेली, सूँडी, कलवार, अगरवाला गैवियार, बटनवाल, हलवाई वगैरह थे। सूद पर कर्ज देने का काम जमीनदार और सुखी किसान भी करते थे। ब्राह्मण, राजपूत, भूँइहार आदि कुछ जातियों के जवानों को फौज में जगह मिलने लगी थी।"[40] यहाँ पर नागार्जुन विभिन्न आर्थिक श्रेणियों के लोगों का विवरण दिया है।

अंत में एक तथ्य हमारे सामने आ जाता है कि, प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था में विभिन्न आर्थिक श्रेणियों का प्रचलन होता आया है। मानव समाज सदा से वर्गों में विभाजित रहा है।

प्राचीन काल से आज तक समाज का जिस तरह विकास होता गया उसी समाज में स्थित विभिन्न आर्थिक श्रेणियों का भी विकास होता गया। हम पाते हैं कि नागार्जुन के उपन्यासों में उच्च मध्यवर्ग और निम्न मध्य वर्ग का चित्रण हुआ है। फिर भी उच्च मध्यवर्ग की तुलना में मध्यवर्ग का जीवन-चित्रण उनकी अभिव्यक्ति का केंद्र-बिन्दू रहा है।

प्रगतिवादी साहित्यकारों ने इस व्यवस्था का कडा विरोध किया है। साम्राज्यवादी व्यवस्था, स्तरीय रचना मानव में दरारे पैदा करती है - परंतु समाज कितनाही प्रगत रहे उसमें यह स्तर हानिकारक है। इनकी ओर साहित्यकारों ने संकेत किया है। नागार्जुन 'वर्गहीन, स्तरहीन समाज व्यवस्था' चाहनेवाले प्रगतिवादी साहित्यकार है। ग्राम जीवन का आर्थिक संघर्ष देखते समय अर्थस्तरीय समाज व्यवस्थापर सोचना अनिवार्य है।

3.3.6 ग्रामीण लोगों के व्यवसाय :-

प्राचीन काल से लेकर आज तक मानव अपनी जीविका चलाने के लिए कोई-न-कोई व्यवसाय अवश्य करता आया है। इतिहास इस बात का गवाह हैं कि सभ्य समाज निरंतर व्यवसायाभिमुख रहा है। व्यवसाय सामाजिक वर्ग विभाजन की महत्त्वपूर्ण कडी है। अत: जो व्यक्ति जिस स्तर का व्यवसाय करता है उसी के आधार पर उसे संबोधित किया जाता है जैसे लुहार - खेती के काम के औजार बनाता है, नाई - लोगों के केश कर्तन करता है, चमार - जुते बनता, किसान - खेती करता, अध्यापक - पढ़ाने का काम करता है। हर एक के व्यवसाय के स्तर अलग-अलग होते है। जैसे की नौकरी, उद्योग, व्यापार आदि। व्यवसाय के यहाँ पर स्थित तीन प्रमुख स्तरों के आधार पर सम्पूर्ण समाज को उच्च, मध्य, तथा निम्न वर्गों में विभाजित किया जाता है। डॉ. हेमराज निर्मम व्यवसाय को वर्ग विभाजन की कसौटी मानते हुए कहते है, ''मोटे रूप से व्यवसाय स्तरीकरण का निर्णय किया जा सकता है और अंतिम निर्णय के लिए अन्य कसौटियों को भी देखा जा सकता है।''[41]

भारत एक कृषिप्रधान देश होने के कारण ग्रामीण लोगों का जीवन खेती पर निर्भर रहता है इसलिए ग्रामीण समाज व्यवस्था में खेती को ही एक प्रमुख व्यवसाय के रूप मे देखा जाता है। लोग खेती के लिए व्यवसाय के रूप में दुग्ध व्यवसाय, पशुपालन, भैंसपालन, मुर्गीपालन आदि की ओर बढने लगे। आधुनिक काल में तो किसान 'ग्रिनहाऊस' जैसे किंमती व्यवसायों की ओर आकर्षित हुए है। लेकिन आज भी हमारे देहातों के किसान परम्परागत ढंग से खेती करते है, इसलिए उससे अच्छी उपज नहीं हो रही है। परिणामस्वरूप ग्रामों में बदलाव नहीं आया। आज सरकार ग्रामीण

लोगों के लिए, व्यवसाय के लिए लाभकारी अनेक योजनाएँ चला रही है जैसे कि 'रोजगार हमी योजना'। किसानों के लिए खेती ऋण, फसल ऋण, आदि। आज सरकार कम ब्याज में ग्रामीण लोगों के लिए व्यवसाय के लिए ऋण दे रही है। जिसे ग्रामीण समाज जीवन में उत्क्रांति की लहर उठी है। नागार्जुन ने अपनी कुछ रचनाओं का जिक्र किया है, उसे हम देखेंगे -

'रतिनाथ की चाची' (1948) में नागार्जुन ने ग्रामीण समाज में स्थिति स्त्रीयों के व्यवसाय पर सोचा है। अपने खाली समय में स्त्रियाँ छोटे-छोटे काम कर घर परिवार की सहाय्यता करती है। एक दृष्टव्य है - "फुर्सत के वक्त स्त्रियाँ तकली के सहारे बहुत आसानी से कॉट लेती है। आठ-दस वर्ष की उम्र से लेकर जीवनपर्यंत तकली का और उनका साथ रहता है। कहते हैं -ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन से पहले घर-घर तकली चलती थी।"[42] यहाँ पर चुम्मन झॉ के आम के खेती के व्यवसाय के बारे में नागार्जुन कहते है, "चुम्मन झाँ पौँच पेड छोडकर बाकी आम के रूपये चार सौ, पाँच सौ, और छः सौ तक मिल जाते। इस तरह आम भी इनके लिए एक अच्छी फसल थी।"[43] इस प्रकार यहाँ स्पष्ट हैं कि आम की खेती ग्रामीण भागों में थी।

'बलचनमा' (1952) में खुद बलचनमा जो उपन्यास का प्रमुख पात्र हैं वह एक चरवाहे का काम करता है। बलचनमा कहता है, "भैस चराना मुझे खूब पसन्द था। गाँव के बाहर मेरी ही उमर के जब और-और चरवाहे इकठ्ठे होते तो हम अपना-अपना दु:ख भूलकर खेलते।"[44] देहातों में एक तो रोजगार उपलब्ध नहीं होता था जो मिलता उसमें भी कम पैसे मिलते थे जिससे दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती थी। देहाती लोगों को सुबह-श्याम इसकी चिंता सताती है। जैसे की बलचनमा कहता है - "हम दोनों भाई-बहन मालिकों के खेतों में जाकर धान काटते थे। रात का रखा हुआ खाना सुबह अँधेरे हाथ मुँह धोकर खा लेते थे। मैं जब हुक्का पी लेता था तब तक रेबनी बर्तन-बासन माँजकर चूल्हा-चौका कर लेती थी। फिर कमर में हँसिया खोंस कर हम खेतों की ओर चल देते। अगले रोज किस खेत में फसल कटेगी सो पिछली शाम को ही गिरहथ बता देता था।"[45]. बालचन्द राऊत और रामखेलावन के पास एक-एक बैल था। इस संदर्भ में नागार्जुन कहते है, "अक्सर हमारे बैल दूसरों की जमीन में काम कर आते थे, इसके लिए चार आने रोज बतौर भाडा के मिलते थे।"[46] अत: यहाँ पर स्पष्ट है कि देहाती लोगों को अपनी जीविका चलाने के लिए खेती पर अवलम्बित व्यवसायों को ही अपनाना पडता था।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में नागार्जुन सूद पर कर्ज देने के जमींदारों के व्यवसाय के बारे में लिखा हैं, ''सूद पर कर्ज देने का व्यवसाय जमींदार और सुखी किसान भी करते थे।''[47] इस प्रकार यहाँ स्पष्ट हैं कि देहातों में सूदखोरी का व्यवसाय जमींदारों द्वारा खूब चलता था। जिसके तहेत वे अधिक मुनाफा कमाते थे। इनके खिलाप आवाज उठानी चाहिए ऐसा नागार्जुन का मानना है। इसके बारे में अग्रवाल का कथन है कि, '' आज के साहित्यकार को ऐसे ही साहित्य की सृष्टी करती चाहिए, जो मनुष्य के अज्ञान, जड़ता, अंधी परम्परा, बौद्धिक दारिद्रय और कायरता को दूर करके मानव मात्र में आत्मबल का संचार कर सके।''[48]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक मानव अपनी जीविका चलाने के लिए कोई-न-कोई व्यवसाय अवश्य करता आया है। व्यवसाय सामाजिक वर्ग विभाजन की एक महत्त्वपूर्ण कडी है। व्यवसाय के नौकरी, उद्योग, व्यापार आदि जैसे स्तर है। ग्रामीण लोग खेती तथा खेती के सहाय्यक व्यवसाय भी करते है। आज भी देहातों में किसान परम्परागत खेती कर रहे है जिसे अनाज की अच्छी उपज नहीं हो रही है। जिसके कारण किसान तथा ग्रामों का आर्थिक विकास नहीं हो रहा है। सरकार आज ग्रामीण स्तरों पर लोगों ने व्यवसाय करने के लिए विविध विकास योजनाएँ चला रही है। जिससे ग्रामीण जीवन में विकास की क्रांति उमड आयी है।

निष्कर्ष :-

तृतीय अध्याय ''नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन : आर्थिक संदर्भ'' में 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1952), 'नई पौध' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) आदि उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के आर्थिक संदर्भों का वर्णन किया है।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि, आधुनिक काल में 'अर्थ' ही सबसे महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक वस्तु है। अर्थ के अभाव से जीवन भी अर्थहीन है। अत: वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में 'अर्थ' ही सब से महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। आर्थिक स्थिति के कारण ही ग्रामीण-समाज जीवन में परिवर्तन होता है और उसमें असमानता का निर्माण होता है।

'रतिनाथ की चाची' में शुभंकरपूर, 'बलचनमा' में दरभंगा, 'नई पौध' में मिथिला के नौगाछिया ग्राम तथा 'बाबा बटेसरनाथ' में रूपउली ग्राम के आर्थिक स्थिति के अंतर्गत वहाँ की कृषि व्यवस्था, जमींदारों की नीति, सरकारी योजनाएँ, गरीबी एवं बेरोजगारी, विभिन्न आर्थिक श्रेणियाँ तथा ग्रामीण लोगों के व्यवसाय आदि का वर्णन किया है।

'रतिनाथ की चाची' में लेखक ने कहीं-कहीं पर शुभंकरपुर ग्राम के कृषिव्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है। चुम्मन झा की जमीन तथा फसल के बारे में, चित्रण मिलता है। 'बलचनमा' में खुद बलचनमा एक साधनहीन किसान का यातनापूर्ण जीवन बीता रहा है। 'बाबा बटेसरनाथ' में किसान वर्ग के अंतर्गत किसान वर्ग और खेतीहार दोनों के बीच के भेद को वटवृक्ष स्पष्ट करता है।

जमींदारों की नीति तथा उनकी सूदखोरी वृत्ति पर 'रतिनाथ की चाची' में प्रकाश डाला है। यहाँ पर राजाबहादुर गरीब किसानों का आर्थिक शोषण करते है। 'बलचनमा' में खुद बलचनमा जमींदारी शोषण का शिकार होता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन ने एक बटवृक्ष के माध्यम से पीढ़ि दर पीढ़ियों में जमींदारों द्वारा निर्धन किसान, जनता पर किये अत्याचार एवं आर्थिक शोषण की कथा प्रस्तुत की है।

आजादी मिलने के बाद देहातों में भी सरकारने विकास योजनाएँ चलाई। 'बलचनमा' में बलचनमा अपनी बहन रेबनी को पोस्ट सेवा के बारे में कहता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में सस्ते राशन तथा श्लूश गेट का निर्माण जैसी योजनाएँ चलाई जाने की बात कही है।

'बलचनमा' में खुद बलचनमा जमीनदारों के यहाँ काम कराकर उनका जूठन खाकर तथा उन्होंने दिया हुआ पहनकर, ओढ़कर अपना जीवन बीताता है। यहाँ पर हमें गरीबी एवं बेरोजगारी का पता चलता है। 'नई पौध' में तो चतुर्भज़ को गरीबी विरासत में बाप-दादा से मिलने की बात उठायी है। इस प्रकार गरीबी एवं बेरोजगारी की जंजीरों में भारतीय ग्रामीण समाज अटका हुआ है।

प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था में विभिन्न आर्थिक श्रेणियों का प्रचलन होता आया है। आर्थिक श्रेणियों में मोटे तौर पर उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग अर्थात मिडल क्लास, निम्न वर्ग आदि बाते है। 'रतिनाथ की चाची' में निम्नवर्ग की चमाईन, मध्यवर्ग की गौरी की माँ है। तो 'बलचनमा' में फसल की स्थिति अच्छी होने के कारण सब श्रेणियों के लोग खुश होने की बात कहीं है। 'बाबा बटेसरनाथ' में जायदाद के आधार पर विविध आर्थिक श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में ज्यादा तर निम्न वर्ग के लोगों का चित्रण मिलता है।

प्राचीन काल से आज तक मनुष्य अपनी खुद की रक्षा हेतू कोई-न-कोई व्यवसाय करता आया है। व्यवसाय सामाजिक वर्ग विभाजन की महत्त्वपूर्ण व्यवस्था रही है। 'रतिनाथ की चाची' में स्त्रियों के तकली कातने के व्यवसाय की बात कहीं है। 'बलचनमा में खुद बलचनमा चरवाहे का काम करता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में जमींदारों के सूद पर ऋण देने के व्यवसाय के बारे में चित्रण

मिलता है। अत: अंत में हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल में अर्थ ही सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है जिस पर पुरे समाज जीवन का अस्तित्व टिका हुआ है ऐसा मुझे लगता है।

अत: स्पष्ट है नागर्जुन ने विभिन्न अंचलों में गाँवों में स्थित लोगों की आर्थिक स्थिति, दशा एवं गति पर यथार्थ प्रकाश डालकर खेती, मजदूरी, हलवाही, पशुपालन जैसे व्यवसायों का वर्णन किया है। औद्योगिकरण का अभाव रहा है। लगता है सरकारी विकास योजना के कारण से ग्रामजीवन में प्रगति की रोशनी फैलेगी। ग्रामजीवन की आर्थिक स्थिति चित्रित करने में नागार्जुन सफल रहे है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण - 'राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली - प्र. सं. 1995, पृ. 112.
2. तेजसिंह - 'नागार्जुन का कथा साहित्य', पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1993, पृ.92.
3. वही, पृ. 96.
4. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1985, पृ.21.
5. नागार्जुन - 'बलचनमा', पृ. 186.
6. संपा. नामवर सिंह - 'कला और साहित्य चिंतन साहित्य' कार्लमार्क्स 2 व 3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 39.
7. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1967, पृ. 27.
8. वही, पृ. 28.
9. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1985, पृ.93.
10. वही, पृ. 55.
11. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ. 14.
12. वही, पृ. 15.
13. वही,पृ. 70.
14. मधुरेय - 'आलोचना', जुलाई -सितम्बर - 1972, पृ. 50-51.
15. चंडी प्रसाद जोशी - 'हिन्दी उपन्यास - समाजशास्त्रीय अध्ययन', अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1962, पृ. 112.
16. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ. 174.
17. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1974, पृ.37.
18. वही, पृ. 38.
19. वही, पृ. 113.
20. बाबुराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1985, पृ. 175.
21. डॉ. अनिता रावत - 'अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता', चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1998, पृ. 26.

22. डॉ. सुरेश प्रताप यादव - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1992, पृ. 75.
23. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त - 'आँचलिक उपन्यास : अनुभव और दृष्टी'. राधा प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1995, पृ. 8.
24. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1948, पृ.94.
25. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ. 140.
26. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ.124.
27. गणेश प्रसाद पांडेय - ' आठवें दशक की हिन्दी कहानी में ग्रामजीवन', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ. 107.
28. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1948, पृ.13-14.
29. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ.6.
30. नागार्जुन - 'नई पौध', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 13-14.
31. सं. धीरेन्द्र वर्मा - 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग - 1, द्वितीय खंड 2001, पृ. 612.
32. गोविंद सदाशिव घुर्ये- 'जाति वर्ग और व्यवसाय', पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, प्र. सं. 1984, पृ.294.
33. भूपसिंह भूपेंद्र - 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास', श्याम प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1987, पृ.87.
34. डॉ. वीणा गौतम - 'आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना', संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1984, पृ. 19.
35. अॅरिस्टोटल - पोलिटिक्स - रॅनडम हाऊस, न्यूयॉर्क, 1943.
36. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1948, पृ.10.
37. वही, पृ. 22.
38. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ.139.
39. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ.15.
40. वही, पृ. 48.
41. डॉ. हेमराज निर्मम - 'हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग', विभू प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र.सं.1978, पृ. 38.

42. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1948, पृ.12.

43. वही, पृ. 21.

44. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ.11.

45. वही, पृ. 141.

46. वही, पृ. 193.

47. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ.48.

48. 'नया पथ' - पृ. 467.

----x-----